५३२. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६॥

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। तटः, तटी, तटम्।

परिमाणमात्रे द्रोणो व्रीहिः। द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः। प्रत्ययार्थे परिमाणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम्, प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणमिति विवेकः। वचनं संख्या। एकः। द्वौ। बहवः। इहोक्तार्थत्वाद्विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्।

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। इस सूत्र का सामासिक विग्रह कुछ इस प्रकार से है- पदं पदं प्रतिपदं, प्रतिपदमर्हतीति प्रातिपदिकं, प्रातिपदिकस्यार्थः प्रातिपदिकार्थः। प्रातिपदिकार्थश्च, लिङ्गञ्च, परिमाणञ्च, वचनञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि, प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि एव प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रम्, तस्मिन् प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे, प्रथमा। प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे सप्तम्यन्तं, प्रथमा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

प्रातिपदिकार्थमात्र में, प्रातिपदिकार्थ होते हुये लिङ्गमात्र या परिमाणमात्र की अधिकता में तथा वचनार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रातिपदिकार्थ शब्द के अर्थ पर विचार किया जा रहा है। महाभाष्य में प्रातिपदिकार्थ के चार पक्ष रखे गये हैं। **द्विकं, त्रिकं, चतुष्कं, पञ्चकं चेति प्रातिपदिकार्थः।** शब्द जिस अर्थ को लेकर प्रवृत्त होता है, उसे प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं और इसी का दूसरा नाम है- **स्वार्थ।**

१. **द्विकं प्रातिपदिकार्थः** के पक्ष में स्वार्थ, व्यक्ति ये दो प्रातिपदिकार्थ हैं।

२. **त्रिकं प्रातिपदिकार्थः** के पक्ष में स्वार्थ, व्यक्ति, लिङ्ग ये तीन प्रातिपदिकार्थ हैं।

३. **चतुष्कं प्रातिपादिकार्थः** के पक्ष में स्वार्थ, व्यक्ति, लिंग, संख्या ये चार प्रातिपदिकार्थ हैं।

४. **पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः**- के पक्ष में स्वार्थ, व्यक्ति, लिंग, संख्या, कारक ये पाँच प्रातिपदिकार्थ हैं।

इस प्रकार तीन या उससे अधिक प्रातिपदिकार्थ मानने के पक्ष में लिंग, संख्या के भी प्रातिपदिकार्थ के अन्तर्गत आने से प्रकृतसूत्र में **लिङ्ग-वचन** शब्दों का ग्रहण व्यर्थ हो जाता है। अतः प्रातिपदिकार्थ का लक्षण बता रहे हैं-

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। किसी शब्द का उच्चारण करने पर निश्चितरूप से जिस अर्थ की उपस्थिति हो अर्थात् प्रतीति होती है उसे **प्रातिपदिकार्थ** कहते हैं- **यस्मिन् प्रातिपदिके**

उच्चारिते सति यस्यार्थस्य नियमेनोपस्थितिः स प्रातिपदिकार्थः। जिस शब्द के उच्चारण करने से यह पता चले कि यह शब्द इस अर्थ का ज्ञान कराता है, अथवा इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसी प्रतीति जिस शब्द के विषय में हो जाये, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। ऐसा प्रातिपदिकार्थ यहाँ स्वीकृत करने पर **लिङ्ग** और **वचन** का ग्रहण व्यर्थ नहीं है, क्योंकि **नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः** मानने पर उनका अन्तर्भाव प्रातिपदिकार्थ में नहीं होता। जिस वस्तु के उच्चारण के समनन्तर जो वस्तु नियत (निश्चित) रूप से उपस्थित हो, वही उस प्रातिपदिक का अर्थ होता है। जैसे **घट** शब्द के उच्चारण करते ही **कम्बुग्रीवादिमत्त्व** रूप अर्थ की उपस्थिति होती है, वही उसका अर्थ है। अतः केवल प्रातिपदिकार्थ (शब्दस्वरूप, प्रवृत्तिनिमित्त) को अभिलक्षित कर **घट** शब्द से प्रथमा विभक्ति हो जाती है- **घटः।** फलतः किसी भी शब्द से विभक्तियाँ संयुक्त होने के पूर्व उसमें अर्थप्रकाशन की योग्यता (शक्ति) का होना आवश्यक है।

मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। सूत्र में जो **मात्र**-शब्द उच्चारित है। वह अवधारणार्थक है। इसमें चार मानक निश्चित किये गये हैं- प्रातिपदिकार्थ, लिङ्ग, परिमाण और वचन। इन चारों के साथ में मात्रशब्द का प्रत्येकशः सम्बन्ध है। **द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते।** अर्थात् द्वन्द्वसमास के आदि, मध्य और अन्त में पढ़ा गया शब्द द्वन्द्व के विग्रह में उच्चरित सभी शब्दों के साथ लग जाता है। द्वन्द्वसमास करके **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि** बनाया गया है और इसके अन्त में **मात्र** को जोड़ा जा रहा है, अतः **मात्र** का योग **प्रातिपदिकार्थ** के साथ भी, **लिङ्ग** के साथ भी, **परिमाण** के साथ भी और **वचन** के साथ भी हो जाता है। इसका यह अर्थ निकलता है-

प्रातिपदिकार्थ में ही, प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता होने पर, प्रातिपदिकार्थ होते हुए परिमाणमात्र की अधिकता होने पर और संख्यामात्र भी रहने पर प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रातिपदिकार्थता तो सब में रहती ही है।

शब्दों से विभक्ति आना आवश्यक है, क्योंकि विभक्ति लगने के बाद **सुप्तिङन्तं पदम्** से **पदसंज्ञा** होती है। पद होने पर ही वह व्यवहार के योग्य हो जाता है। जैसा कि भाष्यकार ने कहा है- **अपदं न प्रयुञ्जीत।** अर्थात् अपद का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे- **श्री** शब्द है। जब तक इसमें विभक्ति नहीं लगाते तब तक उसका प्रयोग नहीं हो सकता। केवल वैयाकरण लोग विना विभक्ति के भी अर्थ समझेंगे किन्तु जो व्याकरण की प्रक्रिया को नहीं समझते, वे विभक्त्यन्त शब्द का ही अर्थ समझ सकते हैं, क्योंकि वही लोक में प्रचलित है। जैसे केवल **भू**-धातु का लोक में कोई अर्थ गम्य नहीं है किन्तु जब लट्, तिप्, शप्, गुण, अवादेश करके **भवति** बन जाता है तब उसका अर्थ सभी समझ सकते हैं। इसी प्रकार विना विभक्ति के कोई अर्थ नहीं समझ सकता।

अतः पद बने विना उसका प्रयोग नहीं होता। **पद** बनने के लिए **तिङ्** आदि विभक्ति या **सुप्** आदि विभक्तियों का होना आवश्यक है। सुप् आदि विभक्ति कहाँ-कहाँ और किस-किस प्रकार से की जायें? यही निश्चय करता है **कारकप्रकरण** अर्थात् **विभक्त्यर्थप्रकरण।**

प्रातिपदिकार्थमात्रे। जिस शब्द का सीधा-सीधा अर्थमात्र उपस्थित है, ऐसे शब्द से प्रथमाविभक्ति होती है अर्थात् ऐसे शब्द, जिनका उच्चारण करने पर नियतरूप से किसी अर्थ मात्र की उपस्थिति हो अर्थात् प्रतीति होती हो, उनसे प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमाविभक्ति होने का उदाहरण है- **उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्।** इन शब्दों के उच्चारणमात्र से क्रमशः **ऊपर, नीचे, भगवान् कृष्ण, लक्ष्मी जी** और **ज्ञान** ये अर्थ अपने आप किसी अन्य शक्ति के विना भी उपस्थित हो रहे हैं। इसलिए यहाँ पर **प्रातिपदिकार्थ** माना गया और **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई।

सामान्यतः अर्थवान् शब्द की मौलिक स्थिति को **प्रातिपदिक** कहा गया है- **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।** सामान्य अर्थ की अपेक्षा कुछ अधिक प्रतीत हो तो केवल लिङ्गरूप अर्थ, परिमाणरूप अर्थ तथा संख्यारूप अर्थ ही हो। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रातिपदिकार्थ के साथ ही जहाँ लिङ्ग, परिमाण तथा संख्या रूप अर्थ मात्र की प्रतीति होगी, वहाँ उन शब्दों से प्रथमा विभक्ति ही जुड़ेगी।

उच्चैः। नीचैः। उच्चैस् और नीचैस् इन दो प्रातिपदिकों से **प्रातिपदिकार्थ मात्र** में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से **प्रथमाविभक्ति** हुई, **सु** प्रत्यय उपस्थित हुआ। ये दोनों शब्द अव्ययसंज्ञक हैं, अतः **अव्ययादाप्सुपः** से **सु** विभक्ति का लोप हुआ। तदनु **उच्चैस्** और **नीचैस्** के **सकार** को **रुत्वविसर्ग** हुआ। **सु** के लोप होने पर भी प्रत्ययलक्षण के द्वारा विभक्त्यन्त माना जाता है, अतः **पदसंज्ञा** हो गई। पद होने से **प्रयोग योग्य** हो गये। **उच्चैः**=ऊपर, **नीचैः**=नीचे।

कृष्णः। कृष्ण का **वासुदेव** अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अर्थ और लिङ्ग दोनों ही नियत-रूप से उपस्थित हैं। अतः यहाँ प्रातिपदिकार्थ है। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्व की विवक्षा में **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** से एकवचन **सु** आया। अनुबन्धलोप होने पर सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **कृष्णः**।

श्रीः। श्री शब्द के उच्चारण से **लक्ष्मी** यह अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। यहाँ भी श्री-शब्द के नित्यस्त्रीलिङ्गी होने से अर्थ और लिङ्ग दोनों नियत-रूप से उपस्थित हैं। अतः प्रातिपदिकार्थ हुआ। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्वविवक्षा में **सु** आया, उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **श्रीः।** श्री-शब्द न तो ङ्यन्त है और न आबन्त ही। अतः **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सु का लोप नहीं हुआ। शेष विभक्तियों

में प्रायः नदी-शब्द की तरह रूप चलते हैं। विशेष जानकारी के लिये अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण में देखें।

ज्ञानम्। ज्ञानशब्द का **ज्ञान, विद्या की सम्पन्नता** अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। इसमें भी अर्थ और लिङ्ग दोनों नियत-रूप से उपस्थित हैं। अतः प्रातिपदिकार्थ है। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्वविवक्षा में **सु** आया। नपुंसकलिङ्ग होने के कारण सु के स्थान पर **अतोऽम्** से अमादेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **ज्ञानम्** सिद्ध हो जाता है।

अलिङ्गाः नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम्। जो शब्द लिंगरहित (अव्यय) हैं और जो शब्द निश्चित लिंग वाले हैं, वे शब्द **प्रातिपदिकार्थ** मात्र के उदाहरण हैं, जो ऊपर **उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्** के रूप में प्रदर्शित किये जा चुके हैं।

अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। जिस प्रातिपदिक का निश्चित एक लिंग नहीं है, ऐसे अनियतलिंग शब्द लिङ्गमात्राधिक्य के उदाहरण होते हैं। तात्पर्य है कि कोई भी शब्द केवल अपने लिङ्ग को नहीं कह सकता अपितु लिङ्गविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ को ही कहता है। जैसे पुरुषशब्द पुँल्लिङ्गयुक्त मनुष्यरूप प्रातिपदिकार्थ को, नारी-शब्द स्त्रीलिङ्गयुक्त नारी रूप प्रातिपदिकार्थ को तथा पुस्तकशब्द नपुंसकलिङ्गयुक्त पुस्तक रूप अर्थ को अवश्य कहते हैं। अतः इनमें निश्चित लिङ्ग के साथ प्रातिपदिकार्थ की उपस्थिति होने के कारण तट शब्द से उसमें विद्यमान बहुत लिङ्गों में से एक कोई लिङ्गयुक्त नदी का तीर अर्थ तो उपस्थित है किन्तु अनेक लिङ्गों की नियततया उपस्थित न होने से **प्रातिपदिकार्थ** में प्रथमा नहीं हो सकती है। अतः प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता हो तो भी प्रथमा विभक्ति हो, इसके लिए इस सूत्र में **लिङ्ग** ग्रहण किया गया है।

अव्यय शब्द अलिङ्ग होते हैं। अलिङ्ग तथा नियतलिङ्ग शब्दों से प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा होती है। किसी भी शब्द से केवल लिङ्ग या केवल परिमाण का बोध नहीं होता है, प्रत्युत प्रातिपदिकार्थ व लिङ्ग-दोनों का बोध होता है। अतः लिङ्गमात्र का अर्थ है- प्रातिपदिकार्थ से अधिक लिङ्गमात्र। इस प्रकार अनियतलिङ्ग शब्द लिङ्गमात्राधिक्य के उदाहरण हैं।

यद्यपि वृक्ष-शब्द पुंस्त्वविशिष्ट वृक्षरूप प्रातिपदिकार्थ को कहता है, कन्या शब्द स्त्रीत्वविशिष्ट कन्यारूप प्रातिपदिकार्थ को कहता है तथा फल शब्द नपुंसकत्वविशिष्ट फलरूप प्रातिपदिकार्थ को कहता है। भाव यह है कि प्रातिपदिकार्थ तथा लिङ्ग दोनों का ज्ञान साथ-साथ होने से प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा करने पर अलिङ्ग **उच्चैः, नीचैः** आदि, नियतलिङ्ग **वृक्षः, कन्या, फलम्** शब्दों में प्रथमा तो हो जाती है परन्तु अनियतलिङ्ग शब्दों से युगपत् सभी लिङ्गों की नियतोपस्थिति न होने से प्रातिपदिकार्थ में लिङ्ग का ग्रहण नहीं हो पाता है। अतः ऐसे शब्दों से लिङ्गाधिक्य के साथ प्रातिपदिकार्थ में प्रथमाविधान के लिए लिङ्ग-ग्रहण है।

तटः, तटी, तटम्। अकारान्त तट-शब्द से प्रातिपदिकार्थ सहित लिङ्गमात्र की अधिकता में प्रथमाविभक्ति हुई। **पुँल्लिङ्ग** में **राम**शब्द की तरह, **स्त्रीलिङ्ग** में **नदी**शब्द की तरह और **नपुंसकलिङ्ग** में **ज्ञान**-शब्द की तरह प्रक्रिया होती है। ये लिङ्गमात्राधिक्य के उदाहरण हैं।

परिमाणमात्रे- द्रोणो व्रीहिः। परिमाणमात्राधिक्य का उदाहरण बताया जा रहा है- **द्रोणो व्रीहिः।** एक द्रोण बराबर धान। कहीं पर भी किसी शब्द से केवल परिमाण की अभिव्यक्ति नहीं हुआ करती अपितु प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाण अर्थ की अभिव्यक्ति हुआ करती है। अतः प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाणमात्र की अधिकता होने पर प्रथमाविभक्ति होवे, इसलिए सूत्रार्थ में **परिमाणमात्राधिक्ये** कहा गया। जैसे **द्रोणो व्रीहिः**। द्रोण प्राचीनकाल का एक परिमाणवाचक शब्द है, जैसे आजकल सेर, किलो, कुन्टल आदि है। द्रोण का अर्थ परिमाण-विशेष और इस सूत्र से परिमाणाधिक्य में जो सु प्रत्यय हुआ, उसका परिमाण सामान्य अर्थ है। जैसे **एक किलो चावल** इस वाक्य में **नाप** सामान्य परिमाण और **एक किलो** विशेष परिमाण, इस तरह से **एक किलो से नपा हुआ चावल** यह तात्पर्य निकलता है। इसी प्रकार से **द्रोण** का अर्थ भी **परिमाण** है और **परिमाण** अर्थ में हुए **सु** का अर्थ भी **परिमाण** ही है। दो परिमाणों में **द्रोण** का **परिमाण** अर्थ **विशेषण** और **सु** का परिमाण अर्थ **विशेष्य** है। पुनः **द्रोणः** विशेषण और **व्रीहिः** विशेष्य हुए। इस तरह से **द्रोण के रूप में जो परिमाण (माप, नाप), उस परिमाण से नपा हुआ धान** यह अर्थ निश्चित हुआ। **व्रीहिः** में सु विभक्ति **प्रातिपदिकार्थमात्र** में और **द्रोणः** में **सु** विभक्ति **प्रातिपदिकार्थमात्र रहते हुए परिमाणमात्र की अधिकता** में हुई है, ऐसा समझना चाहिए।

यदि यहाँ पर परिमाण अर्थ में विभक्ति न की जाय तो अर्थात् प्रातिपदिकार्थ में ही विभक्ति मानी जाय तो **द्रोणो व्रीहिः** में **द्रोण** (किसी वस्तु का मापक) परिमाण का **व्रीहि**- धान्यविशेष जो माप्य (नापा जाने वाले) के साथ **परिच्छेद्य-परिच्छेदक** (माप्य-मापक)**भाव** रूप सम्बन्ध नहीं होगा अपितु **नीलो घटः** की तरह अर्थात् **नीलाभिन्नो घटः** (नील गुण से अभिन्न घट) इस वाक्य की तरह **द्रोण** से अभिन्न **व्रीहि** ऐसे अभेद सम्बन्ध से अन्वय होने लगता, क्योंकि **नामार्थयोरभेदान्वयः**=एक नामार्थ=प्रातिपदिकार्थ का दूसरे नामार्थ के साथ में अभेदान्वय ही होता है, ऐसा नियम है। जो **द्रोणो व्रीहिः** में कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि- **द्रोण** नापने वाला मापक है और **व्रीहि** उससे नापी जाने वाली माप्य वस्तु है। **द्रोण** परिमाण और **व्रीहि** द्रव्य ये दोनों कभी भी एक नहीं हो सकते। अतः अभेदान्वय को बाधकर **परिच्छेद्य-परिच्छेदकभाव** रूप सम्बन्ध से अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ में प्रथमा की जाती है। अनेक व्रीहि की राशि को यहाँ पर व्रीहित्व जाति मानकर एकवचन निर्देश किया गया है, अन्यथा **व्रीहयः** हो जाता।

द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः। उपर्युक्त **द्रोणो व्रीहिः** का अर्थ हुआ- द्रोण के रूप में जो परिमाण, उस परिमाण से **परिच्छिन्न**=नपा हुआ धान।

जिस अर्थ में प्रत्यय होता है, उस प्रत्यय से उस अर्थ की उपस्थिति करायी जाती है। परिमाणवाची **द्रोण** का अर्थ भी परिमाण है और **द्रोण** शब्द से आयी हुयी सु आदि विभक्ति भी परिमाण अर्थ में विहित होने के कारण उसका अर्थ भी परिमाण ही है। इस तरह दो परिमाणार्थ एक साथ हैं। ऐसे में सु प्रत्यय का **सामान्य परिमाण मात्र** (नाप, तोल) अर्थ होता है और प्रकृति **द्रोण** का अर्थ **विशेष परिमाण** (उसकी मात्रा का कथन) समझा जाता है। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि **द्रोणः** शब्द में प्रकृत्यर्थ परिमाण और प्रत्ययार्थ परिमाण ये दो परिमाण अर्थ उपस्थित हैं। जहाँ दो समान अर्थ एकसाथ एक ही शब्द में उपस्थित हों तो क्या करना चाहिये? देखें-

प्रत्ययार्थे परिमाणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम्। प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणमिति विवेकः। अर्थात् उक्त **द्रोणः** इस प्रकृति-प्रत्यय-समुदाय में से, **प्रत्ययार्थे परिमाणे**=प्रत्ययार्थ परिमाण में, **प्रकृत्यर्थः**=प्रकृति का अर्थ परिमाण, **अभेदेन संसर्गेण विशेषणम्**=अभेद-सम्बन्ध से विशेषण होता है। अर्थात् प्रत्ययार्थ परिमाण विशेष्य है और प्रकृत्यर्थ परिमाण उसका विशेषण बनता है। विशेष्य-विशेषण भाव का नियामक है- अभेदसम्बन्ध। विशेषण और विशेष्य का अभेदसम्बन्ध ही हुआ करता है। तदनुसार यहाँ भी सु-विभक्ति का सामान्य परिमाण अर्थ विशेष्य के रूप में माना जायेगा तथा प्रकृति **द्रोण** का परिमाण-विशेष अर्थ विशेषण के रूप में लिया जायेगा। इस प्रकार द्रोण से द्रोणाभिन्न अथवा द्रोणात्मक परिमाण अर्थ की प्रतीति होती है। एक नियम है- **सामान्यविशेषयोरभेदः।** अर्थात् सामान्य और उसके विशेष में अभेद की ही प्रतीति हुआ करती है। प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ दोनों का एक अर्थ होने पर **प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यम्** इस नियम के अनुसार सु-प्रत्ययार्थ परिमाण प्रधान अर्थात् विशेष्य बनकर के बैठा हुआ है। अब **द्रोणः** पद का अग्रिम पद **व्रीहिः** के साथ अन्वय करना है। उसके सम्बन्ध में कहते हैं- **प्रत्ययार्थस्तु**=प्रत्यय का अर्थ (**द्रोणः** में सु का अर्थ जो परिमाण, वह) **व्रीहौ विशेषणम्**=अग्रिम पद **व्रीहिः** में विशेषण बनता है। इस सम्बन्ध में नियामक क्या है? **परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन**=परिच्छेद्य और परिच्छेदक भाव ही इस सम्बन्ध का नियामक है। नापी जाने वाली वस्तु को **परिच्छेद्य** कहा जाता है और नापने वाले को **परिच्छेदक।** इसी तरह **माप्य-मापक** और **मेय-मान** भी कहा जा सकता है। **परिच्छेद्य-परिच्छेदक, माप्य-मापक, मेय-मानक** ये पर्यायवाची शब्द हैं। **व्रीहि** परिच्छेद्य (माप्य, मेय) है और **द्रोणः** में सु-विभक्ति का अर्थ है- **परिच्छेदक** (मापक, मान)। इस तरह **द्रोणः** के सु-प्रत्यय के साथ **व्रीहि** शब्द का परिच्छेद्य-परिच्छेकभाव सम्बन्ध है और सु-प्रत्ययार्थ परिमाण विशेषण और **व्रीहि** विशेष्य है। **व्रीहि** शब्द के बाद आयी सु विभक्ति **प्रातिपदिकार्थमात्र** में मानी जाती है। इस तरह से विवेचन करके **द्रोणो व्रीहिः** का अर्थ बना- **द्रोण रूप परिमाण से नपा हुआ धान।** द्रोणरूप प्रकृति का अर्थ उसके साथ संयुक्त सु-विभक्ति के अर्थ में विशेषण है और उक्त सु प्रत्यय का

अर्थ व्रीहि-शब्दार्थ में विशेषण है। प्रत्ययार्थ जो पहले विशेष्य बना था, अब व्रीहि-शब्द के लिये विशेषण बन जाता है।

द्रोणरूपं.........इति विवेकः तक के मूल का अर्थ इस तरह से किया जाता है- **प्रत्ययार्थे परिमाणसामान्ये द्रोणशब्दार्थात्मकप्रकृत्यर्थः परिमाणविशेषः सामान्यविशेषात्मकाभेदसंसर्गेणान्वेति। परिमाणसामान्यात्मकप्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्य-परिच्छेदकभावेन व्रीहौ अन्वेति। तथा च द्रोणाख्यपरिमाणविशेषात्मकं यत् सामान्यपरिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरिति बोधो भवति।** संस्कृत के इन वाक्यों का भाव ऊपर व्याख्या में आ चुका है।

संख्यामात्रे- एकः, द्वौ, बहवः। ये **एकः, द्वौ, बहवः** संख्यामात्र में प्रथमा विभक्ति के उदाहरण हैं। **एक, द्वि, बहु** इन शब्दों के स्वतः क्रमशः एकत्व द्वित्व बहुववाची होने पर भी पुनः उन्हीं अर्थों में प्रथमा विभक्ति करनी जरूरी है, जिससे कि ये पद बन सकें। इन तीनों शब्दों से संख्यामात्र में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। **एक+सु** में रुत्वविसर्ग करके **एकः।** **द्वि+औ** में **त्यदादीनामः** से अत्व, **द्व+औ** बना। वृद्धि होकर **द्वौ** बना। **बहु+जस्** में **जसि च** से गुण करके अवादेश, रुत्वविसर्ग करके **बहवः** सिद्ध हुआ।

इह उक्तार्थत्वाद् विभक्तेः अप्राप्तौ वचनम्। अर्थात् यदि प्रकृतसूत्र में **संख्या** शब्द का ग्रहण न कर तद्वाची शब्दों से भी केवल प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा का विधान मानने पर, **इह**=**एक, द्वि, बहु** शब्दों में, **उक्तार्थत्वात्**=प्रातिपदिकों से ही क्रमशः एकत्व, द्वित्व और बहुत्व अर्थ के उक्त हो जाने से, **विभक्तेः**=एकत्व, द्वित्व और बहुत्व बोधक सु आदि प्रत्ययों की **अप्राप्तौ**=अप्राप्ति हो जाती है। अतः **वचनम्**=प्रकृतसूत्र में **संख्या** शब्द का कथन किया गया है। तात्पर्य यह है कि जैसे **एक** शब्द से **एकत्व** संख्या, **द्वि** शब्द से **द्वित्व** संख्या और **बहु** शब्द से **बहुत्व** संख्या का अर्थ स्वतः उपस्थित है। अतः कि एक, द्वि, बहु आदि संख्यावाचक शब्दों से ही संख्या-अर्थ (जो प्रातिपदिकार्थ है, वह) उक्त (कहा जा चुका) है और उस उक्त अर्थ को बताने के लिए सु, औ आदि प्रत्यय नहीं किये जा सकते क्योंकि- **उक्तार्थानामप्रयोगः**, उक्तः=कहा गया है, अर्थः=अर्थ, जिन शब्दों का, ऐसे शब्दों का, पुनः उसी अर्थ के लिये, अप्रयोगः=प्रयोग नहीं किया जा सकता, अर्थात् पुनः तदर्थ की उपस्थिति के लिये यत्न नहीं किया जाता, ऐसा नियम है। क्योंकि वैसा होने पर तो पुनरुक्ति हो जायेगी। अतः एक, द्वि आदि से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या रूप अर्थ के उक्त होने पर भी **संख्या**-शब्द के वचन-ग्रहणसामर्थ्य से **उक्तार्थानामप्रयोगः** इस नियम को बाधकर सु आदि प्रत्यय होते हैं। इसलिए **संख्या**-शब्द का उच्चारण किया गया है। एकत्व अर्थ एक-शब्द का ही है और एकवचन सु प्रत्यय उसी एकत्व अर्थ का अनुवाद है। इसी

तरह **द्वौ, बहवः** में भी समझना चाहिये। **न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः** इस भाष्यवचन से लौकिक व्यवहार में केवल प्रकृति अर्थात् प्रत्यय रहित प्रातिपदिक का भी प्रयोग नहीं होता और प्रकृति से रहित केवल प्रत्यय का भी प्रयोग नहीं होता। अतः सिद्धार्थ के अनुवादक के रूप में ही सही स्वादि-प्रत्यय किये जाते हैं।

इस सूत्र में मात्र-शब्द का ग्रहण करने से जहाँ प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचन के अतिरिक्त कर्म-करण आदि कारकार्थ का आधिक्य होता है, वहाँ प्रथमा नहीं होती, यह समझना चाहिये।

प्रौढमनोरमा आदि ग्रन्थों में यह बताया गया है कि विशेष योजना से केवल **अर्थे प्रथमा** इतना ही सूत्र रखा जाय तो भी ठीक है, इतने लम्बे सूत्र की बहुत आवश्यकता नहीं है फिर भी उसे स्पष्टार्थता के लिये मान लेना उचित होगा।

५३३. सम्बोधने च २।३।४७॥

इह प्रथमा स्यात्। हे राम!

॥ इति प्रथमा॥

सम्बोधने च। सम्बोधने सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से **प्रथमा** का अनुवृत्ति आती है।

प्रातिपदिकार्थ के साथ सम्बोधन की अधिकता गम्यमान होने पर भी प्रथमाविभक्ति ही होती है।

सम्मुखीकरण अर्थात् दूर से बुलाने को अथवा अपनी ओर अभिमुख करने को **सम्बोधन** कहते हैं। प्रातिपदिकार्थ से अधिक अर्थ की प्रतीति होने के कारण उसका पृथक् निर्देश किया गया है। सिद्ध पदार्थ का क्रिया के प्रति विनियोग करने के लिये सम्बोधन का आश्रय लियो जाता है। ध्यान रहे कि सम्बोधन के लिये प्रयुक्त विभक्ति की **सामन्त्रितम्** सूत्र से आमन्त्रितसंज्ञा भी होती है।

हे राम! यहाँ पर **राम** शब्द से सम्बोधन अर्थ में **सम्बोधने च** से प्रथमा, एकत्वविवक्षा में सु, उसका **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से लोप, हे का पूर्वप्रयोग करके **हे राम!** सिद्ध हो जाता है। यद्यपि **हे** शब्द के बिना भी सम्बोधन की प्रतीति होती है तथापि स्पष्टता के लिये **हे, अयि, भोः** इत्यादि शब्दों का पूर्वप्रयोग किया जाता रहा है।

सम्बोधन के अर्थ का क्रिया में अन्वयबोध होता है। इसके फलस्वरूप आगे कही जाने वाली बात का अध्याहार होकर उसके साथ एकवाक्यता की जाती है। अतः **मां पाहि** (मेरी रक्षा करो) आदि वाक्यांश से इसकी पूर्ति की जाती है। इस प्रकार **हे राम! मां पाहि** इत्यादि वाक्यप्रयोग होते

हैं। इस प्रकार सम्बोधित राम से रक्षा करने की प्रार्थना अभीष्ट है। यहाँ पर **राम** कहने से प्रातिपदिकार्थ व्यक्तिविशेष दशरथपुत्र राम का ज्ञान तो होता है किन्तु अभिमुखीकरण रूप अर्थ की अधिकता होने से प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा सम्भव नहीं थी, अतः पृथक् सूत्र का प्रणयन किया गया है।